ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 186-190
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

कहानीकार संजय खाती की कहानियों में भूमंडलोत्तर परिदृश्य

अजय सिंह रावत
शोधार्थी– हिंदी अध्ययन केंद्र, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान, गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर, गुजरात, भारत

Received- 07.12. 2021, Revised- 12.12. 2021, Accepted - 16.12.2021 E-mail: ajaysinghrawat912@gmail.com

सारांशः *हिंदी कहानी परिदृश्य में बीसवीं सदी के अंतिम दशक के दौर, भूमंडलीकरण परिदृश्य को अपने में समेटे हुए है। इस समय कई बदलाव एक साथ हुए, पंजाब में अस्सी के दशक में उभरता आतंकवाद, 1984 में इंदिरा गाँधी की हत्या, हत्या से हुए दंगेद्य 1989 में सोवियत का विघटन, 1989 में मण्डल कमीशन की सिफारिशों का लागू होना, उसके खिलाफ विरोध प्रदर्शन होना, 1990 में भाजपा की रथ यात्रा, 1990 में कश्मीर में आतंकवाद की समस्या के कारण कश्मीरी पंडितों के पलायन, 1991 में राजीव गाँधी जी की हत्या, 1991–92 में नई आर्थिक नीतियाँ लागू करना, 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस, 2002 में गोधरा घटनाक्रम। इतने सारे परिवर्तन एक साथ होने से मध्यम वर्ग में रोजी–रोटी के लिए पलायन बढ़ा, जिससे सयुंक्त परिवार टूटे,अकेलापन बढा। ओमा शर्मा के अनुसार "यह समय जटिलताओं का है जो व्यक्ति, परिवेश एवं अंतर्धाराओं के स्तर तक पसरी पड़ी हैद्य आज का आदमी कई–कई प्रायः परस्पर विरोधी, जिंदगियाँ गुजारने को अभिशप्त हो रहा हैद्य उसे पैसे की अथाह हवस है, पर मन का सुकून भी चाहिए,उसे शहर की सुख–सुविधाओं की आदत हो गयी है, मगर गाँव–देहात की तरोताजगी की कमी भी महसूस होती है, उसे विदेशी इत्र या संगीत पसंद आता है, तो कहीं अपनी विरासत के अपरदन पर ग्लानी भी होती है, उसे पढ़ी–लिखी आधुनिका पत्नी भी चाहिए तो सेवा–शिश्रुषा करने वाली औरत भी उसे छोटे परिवार की स्वछंदता–स्वायत्तता अच्छी लगती है तो संबंधों में ऊष्मा का भाव भी खटकता है, उसे कुछ विशिष्ट करने की ललक भी है, मगर साधारण जिंदगी के तमाम सुखों को बटोरने की लिप्सा भी।"*

प्रस्तुत आलेख संजय खाती की दो रचनाओं (क) पिंटी का साबुन, (ख) बाहर कुछ नहीं था के आधार पर लिखा गया हैद्य संजय खाती का जन्म 1962, अल्मोड़ा (उत्तराखंड) में हुआ। 'पिंटी का साबुन' रचनाआर्य स्मृति साहित्य सम्मान से सम्मानित हैं। इनका कुछ भाषाओँ में अनुवाद भी है। फिलहाल पत्रकारिता क्षेत्र में कार्यरत हैं।

कुंजीभूत शब्द– भूमंडलीकरण ,बाजार, परिदृश्य, ग्रामीण, महानगरीय, आत्मकथात्मक शैली, संस्मरण, संक्षेपण ।

संजय खाती की कहानियों में भूमंडलोत्तरग्रामीण परिदृश्य– संजय खाती की अधिकतर कहानियों में उत्तराखंड के ग्रामीण जीवन का चित्रण हुआ हैद्य पिंटी का साबुन कहानी की पहली पंक्ति में ही गाँव के मुख्यधारा से कटे होने का पता चल जाता है, वे लिखते हैं कि "हमारे गांव में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। साबुन का नाम हमने और दूसरे लोगों ने सुना जरूर था, लेकिन दो–चार ही लोग ऐसे मिलेंगे जिन्होंने उसे सचमुच देखा हो।"[2]

हिंदी साहित्य : परम्परा और प्रयोग में अरुण कुमार लिखते है– "संजय खाती की कहानी पिंटी का साबुन (हंस 1990) में विवरण और संक्षेपण की अद्‌भुत मिलावट है। कहानी भी आत्मकथात्मक शैली में है ओर कई कथाकार क्या सम्पादक (शंकर आदि) कभी–कभार कहते हैं कि आत्मकथात्मक शैली में कहानी प्रायः लिखी नहीं जा सकती है। इस नामुमकिन को खाती कुछ इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि मानो दिल्ली में रहते हुए खाती को अपना गाँव याद आ गया हो। इस दृष्टि से सोचने पर संजय खाती की पूरी कहानी संस्मरण या रखाचित्र है लेकिन दो विधाओं का विलय इतना पक्का है कि कहानी केन्द्र में है बाकी कहानी के आटे में थोड़ी चीनी, थोड़ा नमक, थोड़ा दही सब इकठ्ठे मिले हैं। पाठक हिन्दी में पंजाबी भटूरे का स्वाद ले सकता है। कहानी में प्रेम कथा भी है तो इकतरफा, 'मैं अक्सर सोचता कि वह कैसी है और कहाँ होगी। मैंने मन में उसका खाका भी खींच लिया था। कहानी मात्र इतनी है कि गांव में पिंटी (डिप्टी साहब की लड़की) आयी। उसके पास साबुन था और कहते हैं कि पिंटी जहाँ खड़ी होती, वहां से दो कोस तक फूलों की बास–सी महकती। गाँववालों ने साबुन कभी देखा नहीं था।...."[3]

'पटकथा' कहानी में पहाड़ी अंचल में कुछ लोग फिल्मांकन करने आये है। कहानी में खाती लिखते है– "आदिम जाति पर काफी काम किया है हेलन ने। अफ्रीका और अमेजन पर उसके वृत्त चित्र सुपरहिट रहे हैं। इंटरनेशनल सिनेमा रिव्यू में उसकी बहुत लंबी तारीख छपी है। लेकिन हिगिंस है क्यों उसे सैंसेशन मोंगर" कहता है यानी सनसनी की भिखारिन।"[4]
"सड़कों पर मुझे याद आया," मैंने कहा, "जब पहली बार यहाँ गाड़ी आयी तो लोगों ने उसे कोई जानवर समझा। काफी दिनों तक सनसनी रही। यह मेरी देखी हुई बात है। हम घर में छिप जाया करते थे।"[5] आदिवासी जीवन पर फिल्मांकन करते समय जब मृत भैंसे को आदिवासी लोग खाने से मना कर देते हैं तो हेलन चिल्लाती है... "व्हट दैट रास्कल डूइंग" क्या करता है

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

वो बदजात?"[6]

"वे पाँच हैं। पाँचों पास आ गये हैं। तैस से मैं पूछता हूँ, "ऐसे कह देने से चलेगा? पैसे दे रखे हैं। फोकट में नहीं कर रहा। "वो ठीक है साहब, पर ये नहीं होगा हमसे। समझो मुँह दिखाना मुश्किल हो जायेगा। दिमाग में जैसे बर्र ने डंक मार दिया। चिल्ला पड़ा मैं, "नखरे कर रहे हो? ये सब करते नहीं हो तुम लोग?"[7] वह भी बुरा मान गया। फटकारता हुआ बोला, "बापदादा करते होंगे, वो जानें। हम नहीं करते ये सब। सँभलकर बोलो साहब! ऐसे कमीने नहीं हैं हम।"[8] उन पाँचों के सरीर पर तो मैले कच्छे थे, पर इस व्यक्ति(लेखक) ने जिसने भैंसे का खून पिया, उसके दिगम्बरी शरीर पर मैला फटा धारीदार कच्छा नहीं, है आधुनिक अंडरवियर।यहाँ आधुनिकता, बाजार के नाम पर हो रहे व्यापार पर व्यंग्य है। तथा अंचल के लोगों के बेरोजगारी जीवन का भी चित्रण है। 'पुतला' कहानी में खाती खबरों से पड़ते समाज पर प्रभाव से चिंतित हैं वे लिखते है " जार भुस्स नहीं" मैंने कहा, "वह जार्ज बुश होगा। अमेरिका का राष्ट्रपति।"[9] "एक हमारा जमाना था। बीस साल की उम्र तक मैंने रेल नहीं देखी थी। रेल का इंजन जरूर देखा था– वर्णमाला की किताब में।.... "[10] कहानीकार ने साम्प्रदायिक दंगों के पूर्व नियोजन, खबरों द्वारा जनता को और उकसाने पर भी सवाल उठाये है।

'एंटीक' कहानी गाँवों से हो रहे पलायन, वृद्धों के अकेलेपन पर है। "रास्ते के हिचकोलों से पसलियाँ दर्द कर रही थीं। भूरी धूल सारे बदन पर परत की तरह चढ़ गई थी। सड़क के किनारे जहाँ वह खड़ा था, वहीं से चीडों का सिलसिला ढलानों पर उतर रहा था। दूर नीचे चटख हरियाली की एक पाँत नदी के साथ पसरी हुई थी। सब कुछ मन था, सिर्फ हवा की हल्की सनसनाहट को छोड़। पापा ने ठीक कहा था। यह एक दूसरी दुनिया थी।"[11] लेखक ने पहाड़ी अंचल से हो रहे पलायन पर लिखा है– " ज्यादातर घरों पर लोहे के ताले लटक रहे थे। क्यारियों में झाड़–झंखाड़ उग रहे थे और बाड़े टूटी पढ़ी थी। कहीं दरवाजे उघड़े भी थे तो कोई नजर नहीं आता था। आँगन में सुखाने को रखे अनाज पर चिड़ियाँ चोच मार रही थीं। धूप में उकड़ूँ बैठे दो–एक बूढ़ों के पास से वह गुजरा। उसने हाथ जोड़े, लेकिन वे ऐसे ताकते रहे मानो वह वहाँ हो ही नहीं। कुछ बच्चे भी उसने ओट से झाँकते पाए। उसने रुककर उनकी ओर देखा तो वे गायब हो गए।

सिर पर कनस्तर रखे एक बूढ़ी को उसने आते देखा। पानी छलक–छलककर उसके कंधों पर गिर रहा था।वह किनारे रुक गया और पास से उसे गुजरते देखता रहा। वह अपने आप में डूबी जैसे किसी मशीन की तरह चली जा रही थी। उसे यह स्लो मोशन फिल्म की तरह लगा।"[12]

वहीं 'सबक' कहानी एक गाँव के शरारती लड़के की कहानी है। गर्मी की छुट्टियों में वह खेलना, मजे करना चाहता था, किंतु उसके माता–पिता उसे बिल्कुल भी बाहर नहीं जाने देते थे, जिस कारण उसने अपने होम ट्यूशन के मास्साब के घर जाने के बहाने, उनके साथ खेलना, घूमना शुरू कर दिया। एक दिन अचानक मास्साब ने घर आना, स्कूल आना बंद कर दिया। मास्साब लड़के से कहते है– "एक काम कर देगा मेरा पपुवा? तेरा बड़ा एहसान मानूँगा मैं..."[13] सहसा अजीब भर्राई आवाज में कहते हैं मास्साब। क्या–क्या? उत्सुक हो उठता है लड़का। अच्छा नहीं लग रहा उसे मास्साब का यह हाल। दया–सी आ रही है। क्या कर सकता है वह उनके लिए? "अपने बाजू से कहना, मास्साब को फिर रख लो। तुझे तो पढ़ाया है मैंने। बता, पढ़ाना नहीं आता मुझे? तू एक बार बोल ना....."[14] हैरान हो उठा लड़का। "बाज्यू से? बाज्यू से क्यों? उनका क्या इसमें? फीकी हँसी हँसते हैं मास्साब, "अरे पधानजी तो मालिक हैं इस्कूल के। वही निकालते हैं, वही रखते हैं। कमेटी के अध्यक्ष हैं तेरे बाज्यू। यह क्या ? दिनदहाड़े क्या से क्या दिखने लगा उसे ? अभी–अभी क्या धूप में आँखें खुली हैं उसकी ? मास्साब... बाज्यू...मैं.... ऐसे क्यों थे... हमारा बोलना, हँसना, रिसाना, चलना, खेलना शरारत, झगड़े... सबका मतलब साहस समझ आगया है उसे और शायद कुछ समझन हीं आ रहा है। इसीलिए तो चकराया–सा देख रहा है वह, उल्लू की तरह टुकुर–टुकुर ताकते मास्साब को।"[15] कहानी अंचल में शिक्षा–व्यवस्था पर कई सवाल छोड़ जाती है।

'पिंजरे में परी' कहानी में भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति के द्वंद को दिखाया गया है। साथ ही गाँवों में दहेज जैसे मुद्दों पर भी लेखक ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न करते है। कैसे भारत में एक–दूसरे की चिंता करना सामान्य बात है पर विदेशों की व्यस्त जिंदगी में इसे टेंशन माना जाता है।– "इसमे लिखा है रेस्पेक्टे डसर, लाली के फ्रेंडली बिहेवियर से लोग गलत मतलब लगा लेते हैं... उनकी भावुक माँगों के कारण उसे दिमागी टेंशन तनाव झेलना पड़ता है। यह उसकी सेहत के लिए ठीक नहीं है। आप का पत्र मिला। दूसरों के भी ऐसे ही पत्र हमको मिलते रहते हैं। जब भी वह इंडिया से लौटती है. .. हमें यही प्रॉब्लम होती है... इसमें कोई दुर्भावना नहीं होगी। लेकिन यह शोषण है। मैं रिक्वेस्ट करता हूँ, आप भविष्य में लाली से..... " सम्पर्क ना करें।"[16]

'पुल' गाँवों में सरकारी व्यवस्था के हाल की यह कहानी है। "मुझे सन पचपन का वह समय याद है, जब पंडित नेहरू इस इलाके में पधारे थे।..... महोदय पंडिज्जी के वे शब्द मैं आज भी अपनी स्मृतियों में गूँजते सुन सकता हूँ, जो एक खराब

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

लाउडस्पीकर से निकलकर घाटी में फैल गए थे। पंडिज्जी ने कहा था, "पहाड़ के लोगों की तरफ तकलीफ देख कर मेरा दिल भर आता है। यह धरती स्वर्ग से भी सुंदर है, लेकिन यहाँ का जीवन नर्क से भी बदतर। इसीलिए मैं चाहता हूँ और मुख्यमंत्री जी से भी कहूँगा कि इस नदी पर तत्काल एक मजबूत पुल बने, ताकि हमारी नई पीढ़ी उस नयी दुनिया से जुड़ सके, जिसे हमारे वैज्ञानिक बना रहे हैं।"[17]

"...बचपन में मैंने उसे देखा था और उस पर लिखा था...' बेतीघाट सड़क मार्ग पुल, माननीय प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के कर कमलों से शिलान्यास, दिनांक 17 जुलाई 1955..."[18] आज वह पत्थर नहीं है, लेकिन अगर आप इलाके के बड़े–बुजुर्गों से पूछेंगे, तो वे उसके बारे में कई किस्से सुनाएँगे। खुद मुझे एक बार परसोत्तम ताऊ भैंस की रस्सी से बांधकर वहाँ ले गए थे और मेरा सिर उस उस पत्थर पर पटकते हुए उन्होंने बार–बार कहा था, "जै–जै पंडिज्जी, अब बालक तुम्हारे हवाले...." तब उस पत्थर को इस इलाके में पंडिज्जी का पत्थर कहा जाता था और छल–छितर, भूतबाधा दूर करने की उसकी शक्ति की बड़ी मान्यता थी। उस पर बिखरे रहने वाले फूल–पत्ते और चीथड़े मुझे याद हैं। और एक बार तो मैंने उस पर मुर्गी का खून भी लगा देखा था। ताऊ और माँ जैसे लोग उसे किसी चमत्कारी देवता की तरह मानते थे। कहते हैं, एक अघोरी उसे उड़ा ले गया और अब वह कश्मीर की तरफ किसी श्मशान में गड़ा है।"[19]

अशिक्षा के कारण लोगों में अंधविश्वास कैसे जन्मता है, इसका एक उदाहरण हमें लेखक ने दिया है।मास्साब स्कूली किताबों में पढ़ा रहे हैं कि पुल बन गया। तब मास्साब जवाब देते है " सभी कहते हैं और ब्लॉक–तहसील के कागज में इंदराज है कि पुल बन गया।"[20] पुल बजट आवंटन न होने की वजह से नहीं बन पाया था। पर गाँव में लोगों का मानना था कि 'राज पर शनि की दशा लगने के कारण सारे नये निर्माण कार्य बंद करा दिये गए हैं।'

संजय खाती की कहानियों में भूमंडलोत्तर महानगरीय परिदृश्य– शहर की ये परिभाषा शायद ही हमें कभी दिखती हो पर हमारे साथ हमेशा मौजूद होती है। 'पोस्टर' कहानी खाती लिखते हैं– "शहर को कंक्रीट का जंगल कहना लोगों में फैशन बन गया है। इसमें थोड़ा सुधार कर लें तो बेहतर होगा। शहर दीवारों के जंगल हैं। यह दीवारें घरों की हैं, दुकानों की हैं, इमारतों, पुलों और लोकल स्टेशनों की हैं। कंक्रीट, गारे, पत्थर और लोहे की चादरों की हैं। आप देखेंगे कि इन पर चिपके और फटे हुए कागजों के भद्दे निशान हैं। ये दीवारें पोस्टर चिपकाने के काम आती रही हैं। पोस्टर चुनाव से लेकर दवाओं तक के हो सकते हैं। जब जैसा वक्त हुआ–हर तरह के पोस्टर इन पर चिपकाए जाते रहे हैं। हर पोस्टर का एक 'समय' होता है और उसके बाद वह बेकार हो जाता है। फट जाता है या फाड़ दिया जाता है।"[21]

कहानी में दो पात्र है– वीरप्पा, करीम दोनों पोस्टर लगाने का काम करते है। जैसे–जैसे चुनाव करीब आते जाते है, इनका काम दंगो, चुनावी रंजिशों में और कठिन हो जाता है। एक दिन वीरप्पा को पोस्टर फाड़ने के आरोप में मार दिया गया। शहर में वीरप्पा जैसे गरीब, मजदूर लोग जो पेट की आग को बुझाने आते है, वे रोजाना हिंसा की आग में जल जाते है। असल में, शहरों को शहर ही इनके शोषण पर बनाया जाता है।

'बापू की घड़ी' में बाजारवाद के फैलते पावों का भी जिक्र है, गाँधी जी के मूल्यों से ज्यादा अब उनके सामान की कीमत हो गयी है।"जब तक कि वह सपने में ना चली जाएद्य एक दिन चाय लगाते हुए गिरीश ने बिट्टू साब को कहते सुना, "देखा, गाँधी जी की चिट्ठियों कि लाखों में नीलामी हो रही है। मेरी चिट्ठीयाँ सँभालकर रखोगे तो पचास साल बाद करोड़पति हो जाओगे।"सुनने वाले ने कहा, "अगर तुम गाँधी बन जाओ तो!" "उसमें क्या है यार, "बिट्टू साब ने कहा, मैं कल से लँगोट पहनना शुरू कर देता हूँ।"[22]

देवेन्द्र चौबे अपने आलेख में लिखते हैं कि "३भूमण्डलीकरण की कई ऐसी प्रक्रियाएँ है, जो इधर के नये कहानीकारों में साफ–साफ दिखलाई देती है। यहाँ इन्टरनेट की दुनिया से लेकर एक सुविधाभोगी भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नव–निर्मित उत्पादनों की भरमार है जिसमें आज की जिन्दगी के यथार्थ को एक नये ढंग से रचा जा रहा है और मनुष्य है कि उसके मायाजाल से निकल ही नहीं पा रहा है। उदाहरण के लिए, पंकज बिष्ट ने बच्चे गवाह नहीं हो सकते, उदय प्रकाश ने तिरिछ, संजीव ने अपराध, चित्रा मुद्गल ने लकड़बघा, प्रेमकुमार मणि ने खोज, ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सलाम, अखिलेश ने चिट्ठी, संजय खाती ने पिंटी का साबून और अवधेष प्रीत ने नृशंस में समकालीन समय, समाज, राजनीति के यथार्थ तथा बाजारवाद के मायाजाल में फंसे मनुष्य एवं उसके अंतर्मन की बेचौनी, भय, अंतर्द्वद्व अदि का का प्रभावशाली चित्रण अपनी कहानियों में किया है।.."[23]

'बिलन' कहानी वैश्या जीवन पर लिखी कहानी है। बारह–तेहरह साल का एक लड़के विनायक और चंपा की कहानी है। शहरों में दूर–दराज गाँवों से लड़कियाँ रोजगार की तलाश और भूख के कारण शहर में तो आ जाते हैं, पर पढ़े–लिखे न होने के कारण उन्हें अपना जीवन सफाई के कामों, या फिर वैश्यावृति में लगाना पड़ता है। चम्पा को पत्र लिखना नहीं आता,

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

वह विनायक से पत्र लिखवाती है।

"अब्बी तुम एक चिट्ठी लिख दयो। कोई और लिखने वाला हुआ नहीं यहाँ। हुआ एक–दो पर वह आदमी ठीक नईं। क्या बोले और क्या लिख दे। एक रानी को आता लिखना। तो वह ठीक नहीं आजकल। इस करके तुम को बोला, ज्यादा नई। थोड़ा–सा इस पोस्टकार्ड पर। कलम होगा तेरे तमारे पास।"[24] चम्पा बताती है कि एड्स बीमारी हो जाने पर लड़कियों को गाँव भेज दिया जाता है, वे वहाँ अपने मुल्क में मर जाती हैं। चम्पा अपने परिवार के पोषण और छोटे भाई चिन्तू की पढ़ाई के लिए यह काम करती है।

'बाहर कुछ नहीं था' कहानी शहरी परिवेश की कहानी है। लेखक के घर का दरवाजा खड़क सिंह नाम का एक सेल्समैन खड़काता है, उसके पास एक सर्वे का ऑफर है। "खड़क सिंह ने कुछ और टिक लगाए। वह बहुत खुश दिखा। "आप पहले कस्टमर हैं, जिसने मेरे सवालों का जवाब दिया, वरना तो लोग सेल्स वालों को देखते ही भगा देते हैं।"[25]

शहरी दफ्तरों के और उनके कर्मचारियों का वर्णन भी खाती ने बखूबी किया है। " बीस साल की सर्विस में मैंने कभी ऑफिस में ऐसी मुर्दनी नहीं देखी। लोगों की चुहलबाजी एक झटके से गायब हो गयी थी। जो पहले ऑफिस को सिर पर उठाए रखते थे, अचानक चुप–चुप कंप्यूटरों में सिर घुसाए रहने लगे थे। लंच टाइम की मटरगश्तियाँ और गली में खड़े होकर पान चबाते कमेंट पास करने का रिवाज खत्म हो गया था। प्रोजेक्ट टाइम से पहले पूरे होने लगे थे और यहाँ तक कि फ्लर्ट का मजा भी गुजर गया था। हवा इतनी भारी लगती थी जैसे उस में जहरीली गैस भरी हो, लोग फुसफुसाकर बात करते और जब कोई बोलता, तो लगता है एसएमएस की लैंग्वेज में बात हो रही है। फोन खामोश रहने लगे और बॉस ज्यादातर वक्त अपने केबिन में बंद रहने लगा। शायद वह वीआरएस की लिस्ट को आखिरी टच दे रहा है, जो उसके लॉकर में लाल फाइल में बंद बताई जाती थी।"[26]

निष्कर्ष– संजय खाती की दोनोंकहानी–संग्रह 'पिंटी का साबुन' एवं 'बाहर कुछ नहीं था' तत्कालीन परिस्थितियों का समावेश लिए हुए हैद्य क्या मनुष्य मात्र बाजार के हाथों कठपुतली बन गया है?, कब तक सांस्कृतिक सौहार्दों को बिगाड़ने वाली राजनीति खत्म होगी, लोगोंकी संवेदना को बाजार कितना प्रभावित कररहा है आँचलिक, महानगरीय क्षेत्रों में हुएमहीन–संवेदनशीलपरिवर्तनों को खाती ने अपनी कहानियों का हिस्सा बनाया हैद्य उनकी कहानियाँ इन ज्वलंत विषयों पर सोचने के लिए हमेंमजबूर करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, ओमा, चौबे, देवेंद्र, (2006), आखिरी दशक की कहानी, साहित्य का नया सौंदर्यशास्त्र, दिल्ली :किताबघर प्रकाशन, पृ0– 409
2. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 7.
3. कुमार, अरुण, हिंदी साहित्य : परम्परा और प्रयोग, पृ0– 167.
4. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 20.
5. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 20.
6. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 22.
7. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 23.
8. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 23.
9. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 24.
10. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 25.
11. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 31.
12. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 34.
13. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 60.
14. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 60.
15. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 60.
16. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 68.
17. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 48.
18. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 49.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-14, No.-IV, Issues-22, YEAR- Oct.-Dec.-2021

19. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 49.
20. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 51.
21. खाती, संजय, 'पिंटी का साबुन', 1996, किताबघर प्रकाशन, पृष्ठ– 70.
22. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 9.
23. चौबे, देवेंद्र,समकालीन हिन्दी कहानी की दुनिया और सामाजिक अस्मिता के प्रश्न।
24. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 57.
25. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 109.
26. खाती, संजय, 'बाहर कुछ नहीं था', 2007, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ– 110.

*****